International Journal of Sanskrit Research 2016; 2(6): 129-130

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2016; 2(6): 129-130
© 2016 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 27-09-2016
Accepted: 28-10-2016

Pooja Saini
Department of Sanskrit, Hindu Girls College, Sonepat, Haryana, India

Correspondence
Pooja Saini
Department of Sanskrit, Hindu Girls College, Sonepat, Haryana, India

वैदिक वाङ्मय मे विश्वबन्धुत्व

Pooja Saini

संस्कृत शब्द 'सम' पूर्वक डुकृञ् करणे धातु से बना है। जिसका अर्थ है संस्कार कि गई भाषा। संस्कृत भाषा संसार की समस्त परिष्कृत भाषाओं में प्राचीनतम है। निश्चय ही यह संसार भर की समस्त भाषाओं में वैदिक तथा अन्य महान साहित्य के कारण श्रेष्ठ है। इससे धर्मिक दृष्टि से देववाणी या सुरभारती भी कहा जाता है। हिन्दू धर्म के सभी शास्त्र इसी भाषा में निबद्ध है और उनका उद्भव देवताओं से माना जाता है। देवता इसी भाषा को समझते हैं यहीं कारण है कि मन्त्रों का निर्माण इसी भाषा में हुआ, ऐसी हिन्दू धर्म की मान्यता है।

संस्कृतं नाम दैवी वागन्वाख्याता महर्षिभिः।[1]

संस्कृत साहित्य के उद्गम का युग भारतवर्ष की पूर्ण स्वतन्त्रता का काल है, जब भारतवर्ष विश्वभर में उन्नति की चरम सीमा पर पहुँचा था, तब इसके अदम्य उत्साही सन्तान अपनी भुजाओं के बल पर भारतीय संस्कृति की पताका को सर्वत्र फैला रहे थे तथा जब इसका 'विश्वबन्धुत्व' का संदेश संसार के सभ्य मानवों तथा जातियों को भौतिक एवं आध्यात्मिक विकास की ओर अग्रसर कर रहा था।
पश्चिम के देश संकीर्ण राष्ट्रीयता की भावना से जकड़े हुए है। फलतः उनके साहित्य में उस संकीर्णता का ही परिचय हमें पद–पद पर मिलता है। इसके विपरीत संस्कृत के कविजन उदारता का आलय लेकर संकीर्णता को अपने पास फटकने नहीं देते। फलतः संस्कृत वाङ्मय विश्वबन्धुत्व की भावना से सर्वथा परिव्याप्त है। भारत में एकता पैदा करने की संस्कृत में महान शक्ति है अथवा मानो कि हमारी रीढ़ की हड्डी यहीं भाषा है। हम अपने दैनिक वार्तालाप में संस्कृत की लोकोक्तियों तथा मुहावरों का प्रयोग भारतीय एकता के लिए करते हैं।

यथा– तमसो मा ज्योतिर्गमय।[2]
सा विद्या या विमुक्तये ।[3]
अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम् ।
उदारचरितानाम् तु वसुधैव कुटुम्बकम् ।।[4]

यह अपना है यह पराया है ऐसी गणना क्षुद्र चित वाले प्राणियों द्वारा की जाती है उदार चरित वाले सज्जनों की दृष्टि में तो सम्पूर्ण वसुधा ही एक कुटुम्ब है। विश्व भावना की अभिव्यक्ति इससे बढ़कर नहीं की जा सकती। संस्कृत वाङ्मय मे विश्वबन्धुत्व नाम आते ही हम सर्वप्रथम वेदों की ओर अग्रसर होते हैं। वैदिक प्रार्थना में समष्टि भावना का पूर्ण साम्राज्य विराजमान है। वैदिक व्यष्टि के कल्याण के लिए जगदीश्वर से प्रार्थना नहीं करता बल्कि वह समग्र समष्टि के मंगल के लिए आशीर्वाद चाहता है। व्यक्ति तथा समाज से उपर उठकर समस्त विश्व के सुख तथा मंगल के निमित ही प्रार्थना की गई है। प्रसिद्ध मन्त्रे वर्णितम्–

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव।
यद भद्रं तन्न आ सुव।।[5]

अर्थात् हे देव! सविता समस्त पापकर्मों को हमसे दूर करो। हमारे लिए जो कल्याणकारी पदार्थ है उसे हमें प्राप्त कराइये। वैदिक ऋषि भगवान से प्रार्थना करता है कि वह मानवमात्र के लिए सुमति–सद्भावना धारण करे उन प्राणियों के प्रति ही नहीं जिन्हें वह देखता है, प्रत्युत उनके लिए भी जो उसकी दृष्टि से ओझल हैं जिन्हें वह नहीं देखते।

यॉश्च पश्यामि यॉश्च न।
तेषु मा सुमतिं कृधि।।

ऋग्वेद तथा अथर्ववेद में विशिष्ट सूक्त है जिनकी संज्ञा है सांमनस्य सूक्त। इनमें विशेष रूप से विश्व–कल्याण की भावना परिव्याप्त है। इस विषय के प्रसिद्ध मन्त्र इस प्रकार हैं–

सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे सं जानाना उपासते।।

इस मन्त्र का तात्पर्य बड़ा गम्भीर है। हे मनुष्यों, जैसे सनातन से विद्यमान दिव्य शक्तियों से सम्पन्न सूर्य चन्द्रादि देव परस्पर अविरोध भाव से, प्रेम से अपने कार्यों को करते हैं, ऐसे ही तुम भी समष्टि भावना से प्रेरित होकर एक साथ कार्यों में प्रवृत्त होकर, ऐकमत्य और परस्पर सद्भाव से रहो। ऋग्वेद का अन्तिम मन्त्र इसी भावना को अग्रसर करता है–

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति।। [6]

आंगिरस संवनन ऋषि प्रस्तुत मन्त्र में मनुष्यों को लक्ष्य कर कहते हैं कि मानवों की चित्तवृति हृदय तथा मन –सब समान हों तभी विश्व के प्राणी परस्पर में सौहार्द से निवास कर सकते हैं। अतः ऋषि केवल अपने वैयक्तिक मंगल के लिए भगवान् से प्रार्थना नहीं करता, अपितु वह मानव हित का प्रार्थी है।

ऋग्वेद में वर्णित नदी सूक्त से प्रतीत होता है कि वैदिक आर्यों के अनुसार नदियाँ निर्जीव केवल जलमयी वस्तुएं नहीं थीं, प्रत्युत वे कल्याण सजीव देवता थीं और इसलिए उनसे प्रार्थना सुनने तथा कामना पूरा करने का आग्रह किया गया है। देश की एकता तथा अखण्डता की इससे बढ़कर कल्पना नहीं की जा सकती।

'विश्वबन्धुत्व' की भावना वेद तक सीमित न रहकर लौकिक संस्कृत में भी पूर्णरुपेण प्रतीत होती है। लौकिक संस्कृत वाड्मय में रामायण जैसे आदि महाकाव्य में 'विश्वबन्धुत्व' की भावना पद–पद पर विद्यमान है। महाकाव्य का आरम्भ ही 'विश्वबन्धुत्व' की भावना से किया गया है। महर्षि वाल्मीकि स्नान के लिए तमसा नदी पर जाते हैं तो मार्ग में एक शिकारी द्वारा द्वंद्व क्रौंच में से एक क्रौंच पक्षी को मरा हुआ देखते हैं। जैसे ही विलाप करते हुए क्रौंची को देखते हैं तो सहसा उनके मुख से करुणामयी वाणी में प्रस्तुत श्लोक निकला–

मा निषाद! प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वती समाः।
यत्क्रौंचमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्।। [7]

जिससे प्रतीत होता है कि महाकाव्य के प्रारम्भ में ही 'विश्वबन्धुत्व' की भावना मानव–मात्र के साथ–साथ प्राणी जगत के साथ भी कूट–कूट कर भरी है।

पूजा के अवसर पर धार्मिक कृत्यों के विधान –प्रंसग में भी राष्ट्रीय भावना की पर्याप्त अभिव्यक्ति होती है। संकल्प के अवसर पर प्रत्येक उपासक अपने सामने अखण्ड भारत का भौगोलिक चित्र प्रस्तुत करता है। वह अपने स्नान या दान के संकल्पवाक्य में देश, काल, कर्ता तथा कर्म इन चारों वस्तुओं का एक साथ योग देकर अपने आपको बृहत्तर भारत का एक प्राणी बतला कर गर्व का अनुभव करता है। यथा–आयामस्तु कुमारीतो गंगायाः प्रवहावधिः।[8] स्नान के समय जिस क्षण स्नानार्थी भारत की सप्त सिन्धुओं से अपने जल में समावेश के लिये इस मन्त्र में प्रार्थना करता है उस समय उसके मानस–पटल पर भारतवर्ष के अखण्ड रूप का चित्र प्रस्तुत हो जाता है–

गंगे च यमुने चैव गोदावरी सरस्वति।
नर्मदे सिन्धु कावेरी जलेऽस्मिन् सन्निधि कुरु।।

भारतीयों का जीवन 'विश्वबन्धुत्व' का व्यवहारिक पक्ष प्रस्तुत करता है। प्रत्येक गृहस्थ ' बलि–वैश्वदेव' के अनुष्ठान के उपरान्त ही स्वयं भोजन करता है। इसी प्रकार श्राद्ध के अवसर पर ऋषियों, मानवों तथा स्वीय पूर्वजों की ही जल द्वारा तृप्ति नहीं की जाती, प्रत्युत नाग, सर्प आदि क्षुद्र जीवों को भी जलांजलि देकर तृप्ति पहुँचाने का सार्वभौम नियम है। यह तर्पण प्रतिदिन विहित अनुष्ठान है, इससे प्रत्येक मानव अपने को संसार के समस्त प्राणियों के साथ सम्पर्क स्थापित कर 'विश्वबन्धुत्व' की साकार उपासना करते हैं। इसके साथ ही यह देखा जाता है कि प्रत्येक धार्मिक अनुष्ठान की समाप्ति पर साधक पुरुष अपना आर्दश इस श्लोक के द्वारा प्रकट करते हैं। यथा–

सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुःख भाग् भवेत् ।।

कोई भी दुखी ना हो एतदर्थ भगवान से अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना की प्रार्थना की गई है।

भारतीय संस्कृति के उज्जवल पक्षों में शरणागत की रक्षा उल्लेखनीय तत्व है। श्येनकपोतोपाख्यान (वन पर्व) में महाराज उशीनर की शरणागत रक्षा का विश्व प्रसिद्ध उपाख्यान है। इससे 'विश्वबन्धुत्व' की भावना पग–पग पर प्रतीत होती है।

इस 'विश्वबन्धुत्व' की भावना का एक गम्भीर दार्शनिक पक्ष भी है। यह समग्र विश्व परमैश्वर्य–मण्डित सत्य ज्ञान अनन्त पर ब्रह्म का ही तो विवर्त है। जगत् के जीव पर ब्रह्म के ही अंशभूत होने पर भर तद्रूप ही है। जगत् के भीतर एक ही सर्वशक्तिमान् परमेश्वर रमा हुआ है–अपनी अलौकिक घटनापटीयसी माया के कारण सर्वत्र व्याप्त है। विश्व का प्रत्येक अणु उसी की अमल शक्तिमत्ता का विजय घोष करता है। विश्व के समस्त जीव उसी परमपिता की सन्तान हैं। ऐसी दशा में उनमें पारस्परिक बन्धुत्व की भावना परिस्पफुरित न होगी अर्थात् अवश्य होगी। यह अद्वैत –सिद्धान्त भारतीय संस्कृति की आधारशिला है।

अन्त मैं यही कहूँगी कि संस्कृत वाड्मय मे संस्कृत कवियों की मनोरम वाणी से भारत में 'विश्वबन्धुत्व' का अपूर्व सन्देश उल्लासित होता है। वे भारत को एक देश ही नहीं मानते, प्रत्युत उसे स्वर्ग से भी बढ़कर मानते हैं।

टिप्पणी

1. काव्यादर्श
2. बृहदारण्यकोपनिषद
3. मुण्डकोपनिषद
4. हितोपदेश
5. यजुर्वेदे
6. ऋग्वेद
7. रामायण
8. मत्स्य पुराण